इकाई 7 सामाजिक सामंजस्यः परिवर्तन के कर्ता तथा उत्प्रेरक

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 समाज और इसकी आवश्यकता

7.4 सामाजिक सद्भाव

7.4.1 सामाजिक परिवर्तन

7.4.2 सामाजिक परिवर्तन के कर्ता/एजैंट

7.4.3 सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक

7.5 सामंजस्यपूर्ण या सद्भावपूर्ण जीवन

7.6 सामाजिक सद्भाव लाने में शिक्षा की भूमिका

7.7 सारांश

7.8 इकाई के अंत में अभ्यास

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

7.1 प्रस्तावना

हम सभी मनुष्यों में कुछ ऐसे लक्षण होते हैं जो हमें अन्य जीवधारियों से अलग बनाते हैं। संभवतः इनमें से एक महत्वपूर्ण लक्षण है स्वतंत्र इच्छाशक्ति और फलस्वरूप चयन की स्वतंत्रता। परंतु हम मनुष्यों में भी अंतर होते हैं जिन्हें व्यक्तिगत भिन्नताओं का नाम दिया गया है। एक ही प्रकार की स्थितियों के प्रति हमारी सोच भिन्न होती है और हमारी अनुक्रिया भी भिन्न होती है। एक रूप में हम सभी अनन्य या अद्वितीय व्यक्ति होते हैं जिनकी क्षमताएँ, योग्यताएँ तथा प्रतिभाएँ अलग–अलग होती हैं।

हमारी अनन्य व्यक्तिगतता (व्यक्तित्व) के होते हुए भी हम अलगाव या एकाकीपन में नहीं रह सकते। यह एक महत्वपूर्ण लोकोक्ति है कि "यदि कोई व्यक्ति पूर्ण एकाकीपन में रहता है या रह सकता है, या तो वह संत है या फिर शैतान"। हमारी सभी आवश्यकताओं के लिए हमें समूहों में रहना पड़ता है और इनके लिए दूसरे व्यक्तियों पर आश्रित रहते हैं। इस पारस्परिक निर्भरता को कायम रखने के लिए हमने व्यवहार सम्बन्धी कुछ मानक या मानदंड निर्धारित किए हैं जिनका अनुपालन समूह (समाज) के सभी सदस्यों को करना पड़ता है। इन मानदंडों तथा मानकों को औपचारिक तथा अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक अन्तरित कर दिया जाता है, जिससे हमारा सामाजिक जीवन संभव हो पाता है। परंतु जैसा आप जानते ही हो कि कई बार हमारे व्यक्तिगत हितों और सामाजिक हितों के बीच एक टकराव की स्थिति आ जाती है जिसके फलस्वरूप शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व का संतुलन बिगड़ जाता है और समूहों में असंगति की स्थिति आ जाती है। हम जानते हैं कि हमारे बड़े समाज में जाति, धर्म, मत, क्षेत्र या भाषा पर आधारित विभिन्न सामाजिक समूह होते हैं। इन समूहों में ऐसी भिन्नताएँ आ जाती हैं जो बड़े समाज के सामान्य हित के विपरीत होती हैं तथा इन भेदों की विद्यमानता असंगति की ओर ले

जाती है। इस इकाई में हम उन कारकों की विवेचना करेंगे जो हमें असंगति की ओर ले जाते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक सद्भाव या सामंजस्य की आवश्यकता और इस परिवर्तनशील गतिज समाज में इसकी भूमिका पर भी चर्चा होगी।

7.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः

- समाज और सामाजिक जीवन की अवधारणा को स्पष्ट कर सकेंगे;
- सद्भाव या सामंजस्य की अवधारणा तथा वर्तमान संदर्भ में इसकी आवश्यकता और महत्व की विवेचना कर सकेंगे;
- सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया तथा मानव जीवन पर इसके प्रभावों का वर्णन कर सकेंगे;
- सामाजिक परिवर्तन लाने में एक कर्ता और उत्प्रेरक के रूप में अपनी भूमिका की व्याख्या कर सकेंगे; और
- सामाजिक परिवर्तन तथा सद्भाव व सामंजस्यपूर्ण जीवन जीने में शिक्षा की भूमिका की विवेचना कर सकेंगे।

7.3 समाज और इसकी आवश्यकता

हमें विदित है कि इस समस्त जगत में दो प्रकार की वस्तुएँ विद्यमान हैंः जीवधारी और निर्जीव। जीवधारियों की आगे और श्रेणियाँ हैं जैसे पादप जगत्, जन्तु जगत् तथा मानव जगत्। और यह भी जानते हैं कि हम मानव कुछ रूपों में एक—दूसरे के समान है और कुछ रूपों में अलग या भिन्न हैं। हम एक जैसे हैं क्योंकि हमारी एक जन्मजात प्रवृति या स्वभाव है जो जन्तुओं से मिलता है। परंतु हम जन्तुओं से भिन्न हैं क्योंकि हमारे पास तर्कण शक्ति है जिससे हम अपनी पाशविक तथा मूल प्रकृति पर नियंत्रण कर सकते हैं। अपनी मूल प्रकृति को नियंत्रित कर सकने की यह योग्यता, जिसमें हम तर्क का प्रयोग करते हैं, हमारी तर्कणापरकता कहलाती हैं, जो हमें अन्य प्राणियों से विशिष्ट बनाती है। जंतु जगत् मात्र सहज प्रवृत्ति से निदेशित होता है और संभवतः उनके पास तर्क करने तथा स्वतंत्र इच्छाशक्ति की क्षमता नहीं है। परंतु हमारे पास स्वतंत्र इच्छाशक्ति है। निःसंदेह बहुधा हम अपनी प्रकृति से निर्देशित होते हैं। हममें अपनी स्वतंत्र इच्छा को काम में लाने की शक्ति है और हम अपने आप स्वतंत्रतापूर्वक चयन कर सकते हैं।

हम अकेले नहीं रह सकते। जैसा आप अनुभव करते हो कि हमें अपनी विभिन्न प्रकार की मूल आवश्यकताओं जैसे भोजन, कपड़े, मकान, दवाओं और पारिवारिक जीवन की कुछ उच्च आवश्यकताओं के लिए अन्य सदस्यों पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः इन सुविधाओं के लिए हम कुछ नियम या मानदंड निर्धारित करते हैं ताकि सद्भावपूर्ण ढंग से रहा जा सके। हम ऐसे समूहों का निर्माण करते हैं जिन्हें समाज कहते हैं।

समाज की संकल्पना

समाज के अर्थ की व्याख्या अलग—अलग समाजशास्त्रियों ने अपने—अपने ढंग से की है। शब्द कोश के अनुसार समाज के विभिन्न अर्थ हैंः कम्पनी, व्यक्तियों का एक संघ, जीवन का सामाजिक रूप इत्यादि। समाज एक समूह है जिसकी अपनी एक संस्कृति होती है और इसका गठन समस्त मानव आवश्यकताओं और हितों की संतुष्टि के लिए किया गया है। समाज व्यक्तियों का समूह होता है और इसकी संस्कृति इस बात से जानी जाती है

कि उनके पास क्या है, वे क्या करते हैं और सामूहिक रूप से क्या सोचते हैं। संस्कृति के घटक प्रायः उनके विचार, जीवन शैली, भाषा, धार्मिक सम्बन्ध होते हैं; वास्तव में इसमें समूह के रूप में जीवन मार्ग शामिल हैं जो उनकी मूल्य प्रणाली, मानक, लोक साहित्य, कानून तथा विचारधारा से जाना जाता है। संस्कृति को व्यवहार या आचरण के ब्लूप्रिंट (रूपरेखा) के रूप में देखा जाता है।

यद्यपि, **वेट** ने इसकी एक व्यापक परिभाषा दी है जो इस प्रकार है **"समाज व्यक्तियों का समूह मात्र नहीं होता है, यह सम्बन्धों का एक ढंग या क्रम है जो इसके विभिन्न सदस्यों के बीच विद्यमान होता है।" टॉम्स हॉब्स** ने समाज की परिभाषा इस प्रकार दी हैः **"समाज व्यक्तियों को उनके ही स्वच्छंद स्वभाव के परिणामों से बचाने का एक साधन है।"** एक अन्य विचारक, **गिन्बर्ग** के अनुसार, **"समाज व्यक्तियों का एक ऐसा समूह है जो कुछ सम्बन्धों या व्यवहार रीतियों से संगठित है, जो दूसरों से मिलकर काम करता है। यह सम्बन्धों का एक नेटवर्क है, जो किसी भी व्यक्ति को उस समाज का सदस्य रहने के लिए अनिवार्य है।"** साथ ही, ऐसा विश्वास भी है कि समाज परिवर्तनशील होता है और यह सामाजिक सम्बन्धों के नेटवर्क को एक जटिल प्रणाली है।

उपर्युक्त सभी व्याख्याओं से हम यह जान गए हैं कि प्रत्येक मनुष्य को दूसरों के साथ रहना होता है और समाज द्वारा निर्धारित व्यवहार प्रतिरूपों के साथ समंजित होते हुए सामूहिक इच्छाशक्ति को स्वीकार करना पड़ता है। समाज के सभी सदस्यों के बीच, उनकी मूल आवश्यकताओं, आर्थिक आवश्यकताओं, संरक्षण, सुविधा और छोटे बच्चों के पोषण के लिए एक अंतरसंबद्धता होती है। व्यक्ति अपनी शिक्षा, उपकरणों, अवसरों और एक–दूसरे के विचारों को बाँटने के लिए उन पर निर्भर होता है। यह समस्त सहभागिता तथा देखरेख का उद्देश्य एक सद्भावपूर्ण तथा सुसमंजित जीवन जीना है। कोई भी सामान्य व्यक्ति अकेला नहीं रहना चाहता, और न ही वह दुःखी जीवन जीना चाहता है। वह चाहता है कि जीवन में कुछ प्राप्त करें और इसकी उपलब्धियों के लिए दूसरों की सहायता या सहारा चाहिए।

इसके अतिरिक्त प्रकृति ने हमें कुछ अद्भुत योग्यताएँ और क्षमताएँ प्रदान की हैं। उदाहरण के लिए, हमारे पास स्मृति है और भाषा, चित्रों, तथा आकृतियों की सहायता से इस स्मृति को कागज पर उतारने का साधन दिया गया है। हम अपनी एक मूल्य पद्धति प्रतिपादित कर सकते हैं, हमारे पास एक विशिष्ट बुद्धि है, हम अपनी मूल प्रवृत्ति को रूपांतरित कर सकते हैं, हमारे पास संस्कृति, वास्तुकला, संगीत, कला, रूप इत्यादि सभी कुछ है। हम कितने भाग्यशाली प्राणी हैं। उपर्युक्त के आधार पर हम कह सकते हैं कि यह सामाजिक प्राणी (मनुष्य) स्वतंत्र हैं और अपनी विभिन्न प्रकार की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए और एक सुखी जीवनयापन के लिए इसमें एक समाज का निर्माण करने की क्षमता है।

बोध प्रश्न 1

टिप्पणीः (क) अपने उत्तरों को दिए गए रिक्त स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

i) अपने शब्दों में समाज की संकल्पना की व्याख्या करें।

....

....

....

सामाजिक जीवन

आज जबकि समाजों का गठन हो गया है, चाहे यह चेतन प्रयास से हुआ है अथवा मूल आवश्यकताओं, जैसे भोजन, मकान (आश्रय), प्रजनन और सुरक्षा की पूर्ति के लिए, अब आवश्यकता इस समाज को परिरक्षित रखने या बनाए रखने की है। समाज को बनाए रखना इसलिए आवश्यक है ताकि हमारी आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहे। और क्योंकि समाज अधिक जटिल या संश्लिष्ट हो गए हैं, वे मात्र मूल आवश्यकताओं की ही पूर्ति नहीं करते हैं अपितु मानव की अन्य और अधिक उच्च या बौद्धिक आवश्यकताओं की पूर्ति भी करते हैं जो सामाजिक सम्बन्धों को परिरक्षित रखते हैं और संचित ज्ञान, संस्कृति, भाषा, मानदंडों की सुरक्षा भी करते हैं और अगली पीढ़ी को सौंप देते हैं।

सामाजिक जीवन में सामाजिक सम्बन्धों का एक जाल होता है। इन सम्बन्धों को कायम रखने के लिए, कुछ मानदंडों का निर्माण किया गया है जिनका अनुपालन सभी सदस्यों को करना पड़ता है। मनुष्यों में पाए जाने वाले सम्बन्ध अन्य प्राणियों के सम्बन्धों से बहुत अधिक जटिल होते हैं।

व्यक्तियों या सामाजिक समूहों में एक पारस्परिक निर्भरता देखने को मिलती है जिसके कारण साहचर्य का एक स्तर या निकटता कायम रखते हैं जो जटिल है परंतु हम सब अपने हित के लिए और अपनी इच्छा से उसे कायम रखते हैं। ये समाज आज के वर्तमान रूप में किसी समझौते के फलस्वरूप या विशेष प्रावधानों के कारण नहीं आए हैं अपितु विभिन्न प्रावस्थाओं में से गुजर कर इनका विकास हुआ है।

समाजशास्त्रियों ने विकास की इन प्रावस्थाओं की रूपरेखा बनाई है। **पहली प्रावस्था** शिकार करने और भोजन एकत्रित करने की प्रावस्था थी। **द्वितीय प्रावस्था** वह थी जब कृषि का विकास हुआ। यह व्यवस्थित या नियमित प्रावस्था थी, जब लोगों ने भोजन के लिए शिकार करने की बजाए भोजन उगाना आरंभ किया। यही वह प्रावस्था थी जब स्वामित्व की संकल्पना उभरी। **तीसरी प्रावस्था** थी जब भोजन उगाने के अधिक परिष्कृत तरीके खोजे गए। उससे अगली प्रावस्था पशुपालन प्रावस्था थी जब लोगों ने पशुओं को पालतू बनाना आरंभ किया ताकि उनका प्रयोग अपने कामों के लिए किया जा सके। और वर्तमान अवस्था औद्योगिक प्रावस्था है जब विज्ञान और प्रौद्योगिकी का तीव्रता से विकास हुआ है। इससे हमारे सामाजिक रीति रिवाजों, परंपराओं और इस प्रकार हमारे सामाजिक जीवन में बेहद परिवर्तन आया है। हमने अपनी विशिष्ट जीवन पद्धतियों का विकास कर लिया है। अतः अब हमारी अलग–अलग संस्कृतियाँ, भाषाएँ, वास्तुकला, संगीत, कला, रूप, लोक साहित्य, पौराणिक कथाएँ तथा दंत कथाएँ, भिन्न जीवन दर्शन, धर्म, वेशभूषाएँ, भोजन शैलियाँ और वह सभी कुछ हैं जो विशिष्ट विचारधारा, मानदंडों और अपनी निजी आस्था व विश्वास प्रणालियों को प्रेरित करते हैं।

क्रियाकलाप 1

चार–भिन्न–भिन्न प्रकार के परिवारों का साक्षात्कार कीजिए और देखिए कि किस प्रकार उनकी शैलियाँ भिन्न–भिन्न हैं?

....

....

....

....

....

जैसे–जैसे हमारा विकास हुआ (जो अब भी हो रहा है) हमारे अलग–अलग समुदाय या समूह बनते गए, जीवन के विभिन्न पक्षों पर हमारे विचार भी भिन्न–भिन्न होते गए। प्रत्येक समूह यह सोचता है कि उसकी चिंतन शैली या प्रक्रिया अन्य समूहों की तुलना में श्रेष्ठ है अथवा बेहतर है। एक समूह के भीतर भी प्रत्येक व्यक्ति की अपनी राय और आस्था होती है जिसके फलस्वरूप मत–वैभिन्य होता है जो आपसी झगड़ों या संघर्ष को जन्म देता है। यही छोटे–छोटे झगड़े कई बार विकराल रूप ले लेते हैं और समाज में असंगति और बैर भाव बढ़ जाता है। इन झगड़ों को सामाजिक संघर्ष/द्वंद्व कहते हैं। यहाँ पर हम सामाजिक संघर्षों को व्यक्तियों और समूह स्तर पर समझने का प्रयास करेंगे न कि उस व्यापक स्तर पर जो युद्धों को जन्म देते हैं।

समाज स्थैतिक नहीं होते हैं। वे गतिक तथा निरंतर रूप से परिवर्तनशील होते हैं। यह परिवर्तन कौन लाता है? अथवा क्या चीजें या स्थितियाँ हैं जो परिवर्तन का कारण बनती हैं? क्या परिवर्तन सदैव अच्छे के लिए होता है? क्या परिवर्तन की गति में तेजी लाई जा सकती है? इस परिवर्तन का उत्प्रेरक कौन हो सकता है?

इस प्रकार बहुत से प्रश्न हैं जिनसे हमारा सरोकार है। इस पर हम अगले भाग में विचार करेंगे। परंतु पहले हम यह स्थापित करना चाहते हैं कि सामंजस्य या एक–दूसरे के साथ शांति से रहने की इच्छा या आवश्यकता क्यों पड़ती है। सामंजस्य, सौंहार्द या भाई–चारे का अर्थ क्या है? क्या इसका अर्थ है सर्व दिशाओं में शांति हो और कहीं भी अशांति या हुल्लड़बाजी न हो, कोई मतभेद या वैचारिक भेद न हो और प्रत्येक व्यक्ति सदैव शांति से रह सके।

आइए, अब पहले सामाजिक सामंजस्य या सद्भाव की अवधारणा को समझने का प्रयास करें।

7.4 सामाजिक सद्भाव

हम स्वतंत्र पैदा हुए हैं परंतु क्या इस आशय से वास्तव में स्वतंत्र हैं कि हम व्यक्तियों या सामाजिक समूहों के रूप में अन्य व्यक्तियों या सामाजिक समूहों पर निर्भर नहीं करते? वास्तव में हमें अपने भोजन, कपड़े, आश्रय, प्रजनन, चिकित्सीय देखभाल और सुरक्षा की अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए, दूसरे लोगों या सामाजिक समूहों पर निर्भर रहना पड़ता है। अतः हमें अपने सामाजिक जीवन में दूसरे व्यक्तियों या समूहों के हितों का ध्यान भी रखना पड़ता है और रखना चाहिए भी, उसी प्रकार जैसे हम चाहते हैं कि दूसरे व्यक्ति हमारी स्वतंत्रता तथा हितों का अतिक्रमण न करें। हमें भी दूसरों की स्वतंत्रता तथा हितों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। सामाजिक जीवन जीने की प्रक्रिया में दूसरों के साथ रह सकने के लिए अपनी कुछ स्वतंत्रताओं पर नियंत्रण रखना होगा। आपको विदित है कि मनुष्य होने के नाते हम स्वतंत्र प्राणी हैं और तर्कणापरक प्राणी हैं। स्वतंत्र प्राणी के रूप में हम चाहेंगे कि दूसरों को हमारी स्वतंत्रता को काटना नहीं चाहिए या हमारे हितों को संकट में नहीं डालना चाहिए, परंतु तर्कणापरक प्राणी के रूप में हम चाहेंगे कि हमें भी दूसरे व्यक्तियों के हितों का अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। जब व्यक्तियों या समूहों में ऐसी समझ का विकास होता है तो इससे समाज या समाजों में पारस्परिकता तथा सहोपकारिता की भावना का विकास निश्चित रूप से होगा। और यही अवस्था है जिसे हम सामाजिक सामंजस्य या सद्भाव का नाम देते हैं। यह वह अवस्था है जहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपने निजी स्वतंत्र विकास की तलाश में यह नहीं भूलता कि इस प्रक्रिया में उसे दूसरे व्यक्तियों या समूहों की ऐसी स्वतंत्रताओं का अतिक्रमण नहीं करना है।

सामंजस्य एक अनिवार्य या अभिन्न गुण है जो सभी वस्तुओं, पक्षों और विचारों को एकत्व में बाँध देता है।

यदि हम सार्वभौमिक सामंजस्य की बात करें तो हम देखेंगे कि इसमें प्रकृति, समाज तथा मनुष्य सभी का समावेश है। जब समाज में सामंजस्य होगा, तो विभिन्न व्यक्ति जो उस समाज के अंग हैं, एक दूसरे के साथ सौहार्द या सामंजस्य रखेंगे। सामाजिक सामंजस्य विभिन्न स्तरों पर कार्य करता हैः व्यक्ति, परिवार, संचयी समूह, कार्पोरेट, निर्माता, व्यापार, उपभोक्ता आदि स्तरों पर।

यहाँ पर हमारा अधिक सरोकार सामाजिक समूह के भीतर व्यक्ति से है जहाँ व्यक्ति अपनी संस्कृति, धर्म, भाषा, और भौगोलिक क्षेत्र से प्रभावित होता है। कुछ अन्य क्षेत्र भी हैं जैसे राजनीतिक तंत्र, आर्थिक तंत्र इत्यादि, वे भी व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं। सामाजिक गुण के रूप में सामंजस्य समाज में विद्यमान सभी विविधताओं को अपने अंदर समाए हुए है।

हममें से प्रत्येक जब कभी भी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों, जैसे व्यक्तिगत, औपचारिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक इत्यादि में काम करता है तो वह सामाजिक सामंजस्य लाने में योगदान दे रहा है। सामाजिक सामंजस्य की जड़ व्यक्तियों में होती है। यदि व्यक्ति के अपने अंदर सामंजस्य होगा, यदि व्यक्ति ने अपने संघर्षों या द्वंद्वों से स्वयं निपटना सीख लिया है, तो वह अपने साथी संगियों, सहकर्मियों या अन्य व्यक्तियों के साथ सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध आसानी से विकसित कर सकता है। इसमें वे सभी व्यक्ति आते हैं जो उसी सामाजिक–सांस्कृतिक वातावरण से सम्बन्धित हैं। यह सौहार्दपूर्ण सामाजिक समूह तब अन्य सामाजिक समूहों के साथ, जिनकी आस्थाएँ और संस्कृतियाँ अलग–अलग हों, सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध विकसित कर सकेगा और इस प्रकार सुसंगत सम्बन्ध उत्तरोत्तर रूप से विकसित होते रहेंगे और अन्त में समस्त मानवता को अपने दायरे में ले लेंगे।

सौहार्दपूर्ण व्यवहार अच्छाई का प्रतीक होता है, बुराई का नहीं, प्रेम का प्रतीक होता है, न कि घृणा का, नैतिकता का प्रतीक होता है न कि अनैतिकता का, उदारता का प्रतीक होता है, न कि लालच का, सत्यनिष्ठा या ईमानदारी का प्रतीक होता है, कपट का नहीं; कर्मण्यता का प्रतीक होता है, अकर्मण्यता का नहीं, ज्ञान का प्रतीक होता है अज्ञान का नहीं, दृढ़ इच्छाशक्ति का प्रतीक होता है दुर्बलता का नहीं, स्वस्थ का प्रतीक होता है, अस्वस्थ का नहीं, आशावान का प्रतीक होता है, निराश का नहीं। इस प्रकार जीवन के सभी क्षेत्रों में हमने सुंदर चरित्र या स्वभाव का निर्माण करना है जिससे हम सामाजिक यथार्थता को समझ सकें और यह अनुभव कर सकें कि अन्य व्यक्तियों का अस्तित्व तथा विद्यमानता और हमारी एक–दूसरे पर पारस्परिक निर्भरता सामाजिक सौहार्द की स्थापना के लिए महत्वपूर्ण अवयव हैं।

7.4.1 सामाजिक परिवर्तन

जैसा ऊपर बताया गया है कि समाज जड़ न होकर बहुत अधिक गतिज होते हैं, अर्थात् वे समय के साथ बदलते रहते हैं। समाजों के अपने मानदंड, रीतिरिवाज होते हैं जिनसे वे उस समय से सम्बन्धित संस्कृति का निर्माण करते हैं। जीवन के बदलते प्रतिरूपों जैसे कृषि प्रणालियों, आर्थिक क्रियाकलाप, ज्ञान में उन्नति, वास्तुकला, संगीत तथा शिक्षा में परिवर्तन के कारण सामाजिक जीवन के मानदंड परिवर्तित हो रहे हैं। सामाजिक परिस्थितियों में और परिवर्तनों से हमारी चिंतन प्रक्रिया में, हमारे रहने में, राजनीतिक सम्बन्धों, हमारी धार्मिक आस्थाओं और हमारी नैतिकता में परिवर्तन आ जाते हैं। इन और अन्य बहुत सारे कारकों से दूसरों के साथ हमारे सम्बन्धों में, इन परिवर्तनों के प्रति हमारी अनुक्रिया में संगत परिवर्तन आ जाते हैं जिनके फलस्वरूप हमारे जीवन में कुछ द्वंद्वात्मक स्थितियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं।

निःसंदेह हम चाहते हैं कि हमारा जीवन सुरक्षित तथा स्थिर रहे, परंतु साथ ही हम जीवन

में प्रगति और परिवर्तन भी चाहते हैं। स्थायित्व और परिवर्तन, स्पष्टतः एक द्वंद्वात्मक स्थिति है, परंतु जीवन की सच्चाई तो यही है।

सामाजिक परिवर्तन से मान्य मानदंडों, आस्था या विश्वासों, रीति रिवाजों इत्यादि में परिवर्तन आता है। उदाहरण के लिए, नवयुवकों के व्यवहार प्रतिरूपों में परिवर्तन, समाज में महिलाओं की स्थिति, धर्म के स्थान, नैतिक आचरण संहिता की समझ, इन सभी कारकों से सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन आते हैं, चाहे उन्हें आप पसंद करें अथवा नहीं और जो आपके वैयक्तिक आंतरिक सामंजस्य तथा दूसरों के साथ सामंजस्य में गड़बड़ या उथल–पुथल पैदा कर सकते हैं। इसका अर्थ यह है कि आपको अपना सामंजस्य कायम रखने के लिए निरंतर प्रयास करते रहना होगा।

आप इस बात से सहमत होंगे कि सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया होती है। इसकी दिशा भी निश्चित नहीं होती और सामाजिक परिवर्तन की दर अलग–अलग समाजों में अलग–अलग होती है। कुछ व्यक्ति परिवर्तन का स्वागत करते हैं और उस परिवर्तन को स्वीकार कर सुखी अनुभव करते हैं, परंतु दूसरे कुछ व्यक्ति ऐसे भी होते हैं जो अपनी स्थिति के प्रति काफी कठोर व अनम्य होते हैं और इन परिवर्तनों के अनुकूल अपने आपको ढालना उनके लिए कठिन हो जाता है।

ऐसे बहुत से कारक हैं जो इस सामाजिक परिवर्तन का कारण बनते हैं। इनमें से कुछ प्राकृतिक कारक होते हैं, कुछ पारिस्थितिक आपदाएँ जैसे भूकंप, बाढ़, आंधी–तूफान इत्यादि हमारी जीवन शैली में परिवर्तन लाती है। जैव विज्ञानी कारकों से जनसंख्या घनत्व में परिवर्तन ला सकते हैं जिसके फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तन आ सकता है। प्राकृतिक कारकों के अतिरिक्त मानव–निर्मित कारक भी होते हैं, जैसे आर्थिक, सांस्कृतिक प्रौद्योगिकीय कारक, जो सामाजिक परिवर्तन का कारण बन सकते हैं। जिस प्रकार प्रौद्योगिकीय विकास के कारण आर्थिक क्रियाकलाप परिवर्तित होते हैं, उनसे भी हमारी संस्कृति प्रभावित होती हैं। उदाहरण के लिए मोबाइल फोन, लैपटॉप इत्यादि को लीजिए और सोचिए कि इनसे आपके सम्बन्धों और जीवनशैलियों में कैसे परिवर्तन आया है।

हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हम सामाजिक परिवर्तन के कर्ता भी हैं और ग्राही भी। आइए, अब सामाजिक परिवर्तन के कर्ता या कारणों पर विचार करें।

7.4.2 सामाजिक परिवर्तन के कर्ता / एजेंट

परिवर्तनकर्ता कौन होता है? थिसारस (विश्वकोश) के अनुसार एजेंट एक दूत, एक प्रणिधि, कारण, प्रभावी साधन तथा कर्ता या निष्पादक होता है। दर्शन शब्दकोश के अनुसार, कर्ता वह व्यक्ति होता है जो किसी कार्य को करता है और उसके लिए उत्तरदायी है। उन कारकों पर विचार करते समय जो परिवर्तन लाते हैं, जो उस परिवर्तन का कर्ता है। एक चिंतनशील व्यक्ति जो अपने और अन्यों के कार्यों पर चिंतन करता है एक कर्ता बन जाता है। व्यक्ति को ऐसा विमर्शक और चिंतनशील होना चाहिए जो आत्मसंशोधन के लिए तैयार हो। जब भी समूह में अंतर उभर कर आएँ तो संतुलन या साम्यावस्था को बनाए रखना और उसे सुरक्षित रखना महत्वपूर्ण है। उस संतुलन को हम कैसे बनाए रखते हैं? इसके लिए एक ऐसे संतुलित उपागम या मार्ग की आवश्यकता है जो स्थिति की जाँच–पड़ताल करे, उसका मूल्यांकन करे और तब एक दूसरों के साथ संवाद की व्यवस्था करे। इसके लिए व्यक्ति को चिंतनशील बनना होगा, उसी अवस्था में वह परिवर्तन का कर्ता या प्रणिधि बन सकता है। अपनी सामाजिक परिस्थितियों तथा मानदंडों का सिहांवलोकन करें और देखे कि पिछले 50 वर्षों में क्या–क्या परिवर्तन आए हैं। यदि हम इससे भी अतीत में जाएँ, हमें उन परिवर्तनों का पता चलेगा जिनके प्रवर्तक कुछ जाने माने या प्रख्यात व्यक्ति रहे हैं, जैसे रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानंद, श्री अरबिन्दो, महात्मा गाँधी, गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर, स्वामी दयानंद सरस्वती इत्यादि।

क्रियाकलाप 2

कुछ प्रख्यात व्यक्तियों के विषय में पढ़ें सोचें और कम से कम एक परिवर्तन का उल्लेख करें जो वे हमारे सामाजिक जीवन प्रतिरूपों में लाए।

....

....

....

....

परंतु आप यह कह सकते हैं कि ये व्यक्ति तो अत्यधिक बुद्धिमान, प्रसिद्ध तथा प्रबुद्ध व्यक्ति थे जो इन परिवर्तनों को साकार कर सके। परंतु आप यह पूछ सकते हैं कि क्या साधारण व्यक्ति के रूप में हम भी कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन लाने में सफल हो सकते हैं? इसका उत्तर सकारात्मक हो सकता है। हम भी परिवर्तन के प्रणिधि या कर्ता हो सकते हैं। हम अपने में वांछनीय परिवर्तन ला सकते हैं। जॉन डिवी ने हमें एक संकल्पना दी जिसे उसने सुधरना या सुधारना नाम दिया। इसका अर्थ है कि मनुष्य जो कुछ वह है, उस से बेहतर बन सकता है। वह अपने आपको अपनी योग्यताओं, अपनी क्षमताओं को शिक्षा के माध्यम से सुधार सकता है। यह शिक्षा ही है जो हमें इस बात को समझने में सहायता करती है कि किसी संदर्भ विशेष में अच्छा क्या है, बुरा क्या है, सही क्या है और अनुचित या गलत क्या है। इस क्षण एक संगत प्रश्न पूछा जा सकता है, इस परिवर्तन को लाया कैसे जाए? परिवर्तन का श्रीगणेश कहाँ से किया जाए? आइए, इन प्रश्नों पर संक्षिप्त में विचार करें।

परिवर्तित किसे किया जाएः ज्यों–ज्यों हम बड़े होते जाते हैं, अपने चारों ओर विभिन्न लोगों को देखते हैं। हम दूसरों के साथ अपने सम्बन्धों को समझने का प्रयास करते हैं और इस दौरान बहुत सारी करणीय तथा अकरणीय बातों को भी जान जाते हैं। तथापि, कुछ ऐसी बातें जिन्हें हम करणीय समझते हैं, गलत हो सकती हैं और कुछ ऐसी बातें जिन्हें हमें अकरणीय बताया गया है, ठीक भी हो सकती हैं। अतः हमें अपने कर्मों या कार्यों को अपने दृष्टिकोण तथा दूसरों के दृष्टिकोण, दोनों से निरंतर रूप में मूल्याँकित करते रहना होगा।

यदि प्रत्येक व्यक्ति को अपने आत्मविकास के लिए स्वयं उत्तरदायी बनना है तो उसे ऐसा परिवर्तन करना होगा जो अत्यधिक वांछनीय है। यदि हम अपने कार्यों पर विचार करें तो अधिकांश अवसरों पर हमें उस संदर्भ में जिसमें हम जी रहे हैं, यह पता चल जाएगा कि हमारे लिए क्या उचित है? अतः वह ज्ञान, विश्वास या आस्था, अभिवृत्ति या व्यवहार जो समय की कसौटी पर खरे नहीं उतरते उन्हें अस्वीकार या परिवर्तित कर देना चाहिए।

वांछनीय परिवर्तन कैसे लाया जाएः इसके लिए यह आवश्यक है कि आप दूसरों के सुझावों के प्रति खुले हों, सुग्राही हों। आप उदार, सहानुभूतिपूर्ण, खुली विचारधारा वाले, दूसरों के साथ संवाद स्थापित करने वाले हों, दूसरों का सम्मान करें और इस पृथ्वी पर दूसरों के अधिकारों को भी समझें, एक अच्छे वाचक हों, प्रेक्षक हों और एक अच्छे विमर्शक हों – अर्थात् अपने और दूसरों के कार्यों पर चिंतन करें।

एक और महत्वपूर्ण सुझाव यह हो सकता है कि क्रोध में आकर दूसरों के साथ बदले की भावना से कार्य न करें परंतु अपने आपमें और अपने कर्मों में दृढ़ विश्वास हो, बदला लेने के लिए अपनी प्रतिष्ठा या स्तर को नीचे न गिराएँ। इन दोनों नकारात्मक कर्मों का आवश्यक रूप से परिहार करें।

परिवर्तन को कहाँ से आरंभ करें: जब भी आप स्थिति को समझने का प्रयास करने लगते हो, आप उसके विषय में अपनी राय कायम करने में सफल हो जाते हों और तत्पश्चात् निर्णय करने की अवस्था में पहुँच जाते हो। आपमें लोगों, सम्बन्धों, रीति रिवाजों, विचारों, मानदंडों, आचार संहिताओं, भाषाओं और दूसरों के अनुभवों की एक गहरी समझ होने लगती है। इससे पूर्व कि आप अपने आपमें और समाज में लाए जाने वाले परिवर्तनों पर विचार करें, इन सभी कारकों को ध्यान में रखना होगा। इस प्रकार न केवल आप परिवर्तन ला सकेंगे अपितु परिवर्तन की गति में भी तेजी ला सकेंगे। इसका अर्थ यह है कि आप परिवर्तन के उत्प्रेरक बन जाते हैं।

7.4.3 सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक

एक उत्प्रेरक का अर्थ होता है एक कर्ता जो परिवर्तन की गति को त्वरित करता है, उसे बढ़ाता है। उत्प्रेरक अपने आप से स्वतंत्र भी हो सकते हो अथवा कोई अन्य व्यक्ति, समूह या संस्था भी जो समाज में तेजी से परिवर्तन लाने में सहायता करती है।

आइए, अब पहले हम एक उत्प्रेरक के रूप में अपनी भूमिका को समझने का प्रयास करें। उपर्युक्त चर्चा में हमने परिवर्तन के उत्प्रेरक के रूप में अपनी भूमिका की कल्पना करने पर विचार किया है। हम सभी व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से परिवर्तन के कर्ता तथा उत्प्रेरक बन सकते हैं। वास्तव में हम परिवर्तन के कर्ता तथा उत्प्रेरक दोनों हैं।

आप जानते हैं कि आप समाज के एक अंग हैं और जिस समाज में आप रहते हैं और उससे अन्योन्यक्रिया करते हैं, उसमें एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। और आप यह भी जानते हैं कि सभी व्यक्तियों को समाज में अपनी–अपनी भूमिका निभानी पड़ती है और समाज के विकास में कुछ न कुछ महत्वपूर्ण योगदान देना होता है और इस प्रकार हम और आप समाज को प्रभावित करते हैं। अतः आप अपना कर्त्तव्य, ईमानदारी, मेहनत और एक वचनबद्धता तथा समर्पण भाव से करते रहते हैं। परंतु वास्तव में सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को त्वरित करने के लिए आपको एक विमर्शक चिंतक के रूप में, एक विवेचित प्रेक्षक के रूप में और उन परिवर्तनों के एक अच्छे समर्थक के रूप में कार्य करना होगा जिन्हें आप लाना चाहते हैं और जो आधुनिक समय के अनुरूप हैं। हमें एक ऐसी परिश्रम या उद्यम संस्कृति के निर्माण की आवश्यकता है जिसमें हम सब उस समाज के हित के लिए, जिस के हम अभिन्न भाग हैं अपना सर्वश्रेष्ठ अर्पण कर सकें और साथ मिलकर कार्य कर सकें। इस प्रकार हम परिवर्तन के उत्प्रेरक बन सकेंगे।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी: (क) अपने उत्तरों को दिए गए रिक्त स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

i) एक प्रारंभिक विद्यालय के अध्यापक के रूप में आप सामाजिक परिवर्तन के उत्प्रेरक कैसे बन सकते हो?

....

....

....

....

....

7.5 सामंजस्यपूर्ण या सद्भावपूर्ण जीवन

कंफ्यूशश ने कहा था, "जब स्वभाव में सौंदर्य हो तो घर में सद्भाव होगा"। इससे आगे कहा जा सकता है कि जब घर में सद्भाव होगा, तो देश में व्यवस्था होगी, विश्व में शांति होगी। शांति घर से आरंभ होती है, शांति से सद्भाव उत्पन्न होता है और सद्भाव स्वभाव के सौंदर्य से आता है। सौंदर्य और सद्भाव की प्राप्ति से चरित्र बल का निर्माण होता है। हम सभी जानते हैं कि प्रकृति में सामंजस्य है, सद्भाव है या व्यवस्था है। यह चक्रीय है और निरंतर है। बहुत हद तक हम प्रकृति तथा प्राकृतिक घटनाओं का भविष्य कथन कर सकते हैं। यही कारण है कि पृथ्वी पर इसके प्राकृतिक परिवेश में महिमा, सौंदर्य और शांति है। सुसंगति में दुनिया कितनी सुंदर प्रतीत होती है। जब वाद्य स्वर संगति में बजते हैं तो उनसे कितने सुंदर स्वर निकलते हैं। यदि स्वर संगति का अभाव है तो यह मात्र शोर होगा चाहे वे स्वर उन्हीं यंत्रों से क्यों न आएँ।

प्रकृति में सुव्यवस्था, सुसंगति या सामंजस्य अन्तस्थ या अन्तर्निहित है। द्वंद्व या विरोध तो हम पैदा करते हैं। सुसंगति तो दुनिया में संपूर्णता पैदा करती है और फिर व्यक्ति और दूसरों के साथ उनके सम्बन्धों में भी। प्राकृतिक सुसंगति प्रकृति का स्वभाव है और प्रकृति अपने सुसंगत प्रक्रमण को कभी नष्ट नहीं करती, यदि ऐसा होता तो यह आत्म–विनाशक हो जाती।

मनुष्य इस प्रकृति का एक अंग है। स्वतंत्रता तथा स्वतंत्र इच्छाशक्ति, जिनका प्रयोग वह कभी–कभी अपने स्वार्थ के लिए करने लगता है जिसके फलस्वरूप प्रकृति में कुछ ऐसे अप्राकृतिक परिवर्तन आ जाते हैं जो प्राकृतिक व्यवस्था या क्रम के अनुकूल नहीं होते, और वे मनुष्य को उसके विनाश की ओर लेते जा रहे हैं और तथाकथित विकास धारणीय न रहकर आत्म–विनाशक होता जा रहा है। अतः आदमी को चाहिए कि ऐसे विशेष प्रयास करे कि प्रकृति के सौंदर्य और सुसंगति को कायम रखा जा सके और इस प्रकार उसके दूसरों और प्रकृति के साथ सम्बन्धों को भी बनाए रखा जा सके। सामंजस्य या सुसंगति से व्यवस्था, शांति, प्रशांति, समयबद्धता, श्रम संस्कृति, अच्छे सम्बन्ध लाती है जो बदले में अपेक्षित और वांछनीय परिवर्तनों को त्वरित करते हैं। सामाजिक सद्भाव या सुसंगति का अर्थ है समाज के सदस्यों के बीच स्नेहपूर्ण व मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों का होना।

इस बात को भली–भाँति समझा जा सकता है कि उदात्त और प्रभावशाली विचार तथा साहित्य, संगीत, वास्तुकला इत्यादि जो जनमानस के उत्कृष्ट तथा विमल मनोभावों या विचारों का निरूपण करते हैं, शांति काल में फले फूले, युद्ध या संघर्षों के समय में नहीं। जब हम संघर्षरत रहते हैं, तो हमारी अधिकांश ऊर्जा इससे निपटने में ही व्यर्थ हो जाती है और बची खुची ऊर्जा से दैनिक भरण–पोषण के कार्य किए जाते हैं। ऐसी अवस्था में सृजनात्मक लक्ष्यों के लिए कोई ऊर्जा और समय शेष नहीं रहता, जिनसे शांति व सद्भावना आ सकती है।

लोगों और वातावरण के साथ सद्भावपूर्ण तथा सामंजस्य के साथ रहने का वैदिक दर्शन इस कथन से स्पष्ट हैः **वसुधैव कुटुंबकम्**", जिसका अर्थ है कि समस्त जगत् मेरा परिवार है।

गाँधीजी के कुछ उद्धरण पढ़कर आप सद्भावना का परिबोध कर सकेंगे।

- *इस दुनिया की शक्ल ही रूपांतरित हो सकती है यदि हम सब मिलकर प्रेम, मैत्री और सौहार्द की भावना से रहने लग जाएँ।*
- *अपने आपको पाने का सर्वोत्तम मार्ग है, स्वयं को दूसरों की सेवा में खो देना।*

- *यदि हम वास्तविक शांति चाहते हैं तो हमें बच्चों से और उनकी शिक्षा से आरंभ करना होगा।*

7.6 सामाजिक सद्भाव लाने में शिक्षा की भूमिका

शिक्षा सामाजीकरण का एक प्रभावकारी तथा अकाट्य हथियार है, जहाँ अध्यापक और शैक्षिक संस्थाएँ सामाजीकरण के कर्ता के रूप में कार्य करते हैं। जब मनुष्य की आवश्यकताएँ बदलती हैं तो समाज में भी बदलाव आता है जो तत्पश्चात् शैक्षिक संस्थाओं में परिवर्तित हो जाता है। शिक्षा बच्चे के समग्र विकास की प्रक्रिया होती है। क्योंकि बच्चा जीवन पर्यन्त सीखता रहता है अतः यह जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है। यह व्यक्ति के व्यक्तित्व को परिष्कृत तथा विमल बना देती है, उसकी योग्यताओं में वृद्धि करती है ताकि वह अपनी क्षमताओं को साकार रूप दे सके, और यह जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आए परिवर्तनों के साथ अनुकूलित करने की योग्यता का विकास करती है। ये विभिन्न क्षेत्र हैंः सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, पर्यावरण सम्बन्धी इत्यादि।

जब शिक्षा को सामाजीकरण के एक साधन के रूप में देखते हैं, तो इसका निहितार्थ है कि यह व्यक्ति को समाज में हुए परिवर्तनों को आत्मसात् करने में सक्षम बनाती है और उन कौशलों और अभिवृत्तियों के विकास में सहायता करती है जिनके आधार पर वह समाज में एक सार्थक भूमिका निभा सके। दूसरी ओर यह व्यक्तियों में विवेचित चिंतन का विकास करती है। समाज में यह एक एकीकरण शक्ति के रूप में काम करेगी और लोगों के बीच अर्थपूर्ण सम्बन्धों का विकास करेगी। "शिक्षा के अधिकार" अधिनियम के द्वारा शैक्षिक अवसरों और शैक्षिक सुविधाओं तक पहुँच का न्यायोचित बंटन सुनिश्चित किया गया है। अवसरों की समानता के माध्यम से शिक्षा उदारता या सहनशीलता की संस्कृति का पोषण व प्रोत्साहन करती है जो सामाजिक न्याय की संकल्पना को अर्थ प्रदान करती है। शिक्षा के मानचित्र पर दलित वर्ग, शैक्षिक रूप से पिछड़े वर्ग और विशेष बच्चे अपना उचित स्थान प्राप्त कर सकते हैं।

शिक्षा पर गठित अन्तर्राष्ट्रीय आयोग (1996) ने अपने प्रतिवेदन – "लर्निंग : द् ट्रैजर विदिन" (यूनेस्को 1996) का सम्बन्ध शिक्षा के चार स्तंभों से स्थापित किया। ये स्तंभ हैंः Learning to Know, Learning to do, Learning to live-to-gether - Learning to live with others, तथा Learning to Be। प्रथम और द्वितीय स्तंभ स्पष्ट रूप से महत्वपूर्ण लगते हैं परंतु तीसरा और चौथा स्तंभ तो आज की दुनिया के संदर्भ में और भी अधिक महत्वपूर्ण व संगत प्रतीत होते हैं, ऐसी दुनिया जो असंतोष व संघर्षों से परिपूर्ण है। हमारे सभी प्रयास इन दो स्तंभों की प्राप्ति में लगने चाहिए जो एक सौहार्दपूर्ण जीवन का मार्ग प्रशस्त करेंगे।

आज पाठ्यचर्या की पुनर्रचना की आवश्यकता है और हमें समाज में इस पुनर्विचार की भूमिका में भाग लेना होगा। हमें ऐसी शिक्षा देनी होगी जिसके माध्यम से द्वंद्वों व संघर्षों का परिहार संभव हो या कम से कम शांतिपूर्ण ढंग से उनका निराकरण किया जा सके और बच्चों में दूसरों के प्रति, अपनी संस्कृति के प्रति और अपने आध्यात्मिक मूल्यों के प्रति सम्मान का भाव विकसित किया जा सके।

जैसा आपको विदित है कि हमें प्रत्येक बच्चे को शिक्षित करना है और प्रत्येक में सर्वश्रेष्ठ गुणों का प्रकटीकरण करना है। इस प्रकार हम शिक्षा के माध्यम से एक–दूसरे के साथ संवादात्मक सम्बन्ध स्थापित करते हुए द्वंद्वों व मतभेदों की समस्याओं का निराकरण कर सकते हैं। हम कह सकते हैं कि हम आपस में शांतिपूर्ण ढंग से असहमति को स्वीकार करते हैं और शांतिपूर्ण सहअस्तित्व के लिए अपने प्रयासों को दोगुना करते हैं, जो एक सौहार्दपूर्ण जीवन की ओर प्रेरित करता है। शांति के लिए शिक्षा के प्रयत्न करने होंगे जिससे दूसरों के प्रति तथा उनके विचारों के प्रति सम्मान बढ़ेगा। हमारा ऐसा व्यवहार समाज में सौहार्द लाने के लिए सफल रहेगा।

बोध प्रश्न 3

टिप्पणी: (क) अपने उत्तरों को दिए गए रिक्त स्थान में लिखिए।

(ख) अपने उत्तरों को इस इकाई के अंत में दिए गए उत्तरों से मिलाइए।

i) शिक्षा सामाजीकरण का एक सशक्त माध्यम कैसे बन सकता है?

....

....

....

....

7.7 सारांश

हम सब इस दुनिया में रहते हैं और विशिष्ट और भिन्न व्यक्तित्वों के रूप में विकसित हुए हैं। हम जानते हैं कि अपने अस्तित्व के लिए हमें एक–दूसरे के सहारे की आवश्यकता है और हम सभी एक सुखद जीवन जीना चाहते हैं, जिनके लिए हम सामाजिक समूहों का निर्माण करते हैं जहाँ हम से एक–दूसरे के साथ सौहार्दपूर्ण ढंग से रहने की अपेक्षा है। परंतु क्योंकि हमारी सबकी भिन्न–भिन्न आवश्यकताएँ हैं, हम घटनाओं और लोगों के प्रति अलग–अलग चिंतन शैलियों, अलग–अलग दृष्टिकोण बना लेते हैं। मनुष्य में तर्कणपरकता तथा संवेग दोनों परस्पर विरोधी बातें विद्यमान होती हैं और अतः हम अनन्य व्यक्तित्वों के रूप में बढ़ते रहते हैं। मनुष्य को स्वतंत्र इच्छाशक्ति और स्वतंत्र वरण का वरदान मिला हुआ है।

परंतु व्यक्ति अकेला नहीं रह सकता है। अतः विभिन्न क्रियाकलापों को संपादित करने के लिए एक–दूसरे का सहारा बनने के लिए मनुष्य ने सामाजिक समूहों का गठन किया। ऐसे समूह जहाँ प्रत्येक सदस्य को समूह के मानदंडों, नियमाधियमों के प्रति सम्मान की आवश्यकता इसलिए अनुभव की गई ताकि कोई द्वंद्व या लड़ाई झगड़े न होने पाएँ और सामाजिक जीवन में सौहार्द हो। परंतु तर्कणापरक होते हुए भी हम बहुत बार अपने व्यक्तिगत हितों से निर्देशित होते हैं जिसके कारण समाज में संघर्ष, लड़ाई–झगड़े तथा असामंजस्य उत्पन्न होता है। सामाजिक सौहार्द की संकल्पना के अतिरिक्त इस इकाई में सामाजिक परिवर्तन पर भी विचार किया गया है। समस्त समाज में अभिवृत्तियों, व्यवहार प्रतिरूपों, मानदंडों, संस्कृति, लोकाचार आदि की दृष्टि से परिवर्तन हो रहा है। सामाजिक व्यवहार में ये परिवर्तन प्रौद्योगिकीय तथा वातावरण सम्बन्धी परिवर्तनों का प्रतिफल हैं। सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है जिसे कुछ व्यक्ति स्वीकारते हैं और कुछ अन्य इसका विरोध करते हैं जिसका परिणाम पारस्परिक झगड़े, द्वंद्व तथा असामंजस्य होते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि परिवर्तन को स्वीकार करने और इस प्रकार परिवर्तन का कर्ता (एजेंट) बनने में हमारी भूमिका क्या है? प्रत्येक व्यक्ति यदि वह एक विमर्शक, चिंतक है तो अन्तस्थ रूप में परिवर्तन का कर्ता या कारण बनता है। कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं जो इस परिवर्तन की गति को बढ़ाते हैं या त्वरित करते हैं, वे परिवर्तन के उत्प्रेरक कहलाते हैं। भारत की कुछ महान विभूतियाँ (जैसे श्री अरबिन्दो, महात्मा गाँधी, गुरु रवीन्द्र नाथ टैगोर, स्वामी दयानंद सरस्वती इत्यादि) हमारे सामाजिक जीवन में परिवर्तन लाई।

हमारी अपनी भूमिका की कल्पना इस रूप में की जाती है कि हमें ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो इन परिवर्तनों पर मनन करे और दिक्काल के संदर्भ में इनके औचित्य को देखे।

शिक्षा समाज में सामाजिक सौहार्द स्थापित करने में सहायक होती है। यह सामाजिक परिवर्तन के घटित होते समय व्यक्ति को उसकी भूमिका को समझने में सहायता करती है। जब हम वांछनीय परिवर्तनों को आत्मसात कर लेते हैं तो हम एक सामंजस्यपूर्ण जीवन की ओर अग्रसर होते हैं। और इस प्रकार सामाजिक सौहार्द स्थापित होता है।

सौहार्द की अपेक्षा इसलिए होती है क्योंकि इससे शांति, प्रशांति, संतोष, बेहतर सम्बन्धों और बेहतर परंपराओं की स्थापना होती है, सौहार्द के फलस्वरूप व्यक्ति प्राकृतिक सौंदर्य का परिबोध कर सकता है।

7.8 इकाई के अंत में अभ्यास

1) मनुष्यों के लिए समाज की आवश्यकता क्यों पड़ी? व्याख्या करें।

2) परिवर्तन के कर्ता के रूप में अपनी भूमिका की विवेचना करें। अपने जीवन तथा विद्यालय वातावरण से एक उदाहरण दें जहाँ आप अपने सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन लाएँ। अपने इर्दगिर्द की स्थितियों पर भी चिंतन करें जहाँ आप अपने आसपास परिवर्तन ला सकते हैं।

3) "सामाजिक सौहार्द या सद्भाव एक अभीष्ट स्थिति है" – सामाजिक सौहार्द लाने में अध्यापक की भूमिका को स्पष्ट करें।

7.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

1) समाज की संकल्पनाः जो बिन्दु सम्मिलित होने चाहिएः

   - व्यक्तियों का समूह
   - सम्बन्धों का जाल
   - बाँटना और देखरेख

2) उदाहरण देकर स्पष्ट करें कि एक अध्यापक सामाजिक परिवर्तन का उत्प्रेरक कैसे बन सकता है।

3) शिक्षा व्यक्तित्व को संवारती है उसे विमल बनाती है, उसकी क्षमताओं को प्राप्त करने के लिए उसकी योग्यताओं को प्रोत्साहित करती है और जीवन में परिस्थितियों के प्रति अनुकूलन में सहायता करती है।

7.10 उपयोगी पाठ्य सामग्री

जराल्ड, एल. घटक, (2009). *न्यू पर्सपैक्टिविस ऑन फिलोसिफी एंड एजुकेशन.* ओहायोः पीयरसन कोलम्बस।

होलगर, आर. स्टब (संपा.). (1075), *दी सोशयोलॉजी ऑफ एजुकेशन – ए सोर्स बुक,* होमवुडः दी डोरसी प्रेस।

कृष्णामूर्ति, जीदू, (1991), *ए होली डिफरेंट वे ऑफ लिविंग,* लंदनः कृष्णामूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, लिमिटेड।

कृष्णामूर्ति, जीदू, (1991), *दी पाकेट कृष्णामूर्ति.* इंग्लैंडः कृष्णामूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, लिमिटेड।

मीठा, स्पेन्सर, (1931). फाउंडेशन्स ऑफ माडर्न सोशयोलॉजी. ओनटरियो, प्रेन्टिस हॉल, कनाडा इंक।

एन.सी.टी.ई. (2006). पैसेज टू पीस एजुकेशन, ड्राफ्ट रिपोर्ट, नई दिल्ली, एन.सी.टी.ई.।

सिंह, लातिका, आर. (1994), इंट्रोडक्टरी सोशयोलॉजी, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली।

शुक्ला एस. एवं कुमार के. (संपा.), (1985), सोशयोलॉजिकल पर्सपेक्टिव इन एजुकेशन. नई दिल्ली, चाणक्य पब्लिकेशन्स।

यूनेस्को (1996), *लर्निंगः दी ट्रैजर विदइन, रिपोर्ट टू यूनेस्को ऑफ दी इंटरनेशनल कमीशन ऑन एजुकेशन फॉर दी ट्वन्टी फर्स्ट सैंचुरी,* पेरिसः यूनेस्को।

योगेन्द्र सिंह, (1991), *सोशल चेंज इन इंडिया,* नई दिल्लीः हरआनंद पब्लिकेशन्स प्राइवेट लिमिटेड।